

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

विश्व-परिवार प्रकरण

धौम्यश्चित्तनलग्नोऽभूत्कुटुंबस्य मयाऽत्र तु ।
बोधितायां महत्तायामियत्यां कर्हिचित्समे ॥ १ ॥
श्रोतारो मागमन् भ्रांतिं गृहप्रचीरगानि नः ।
कर्तव्यानि तथैतानि दायित्वानि तु संति वै ॥ २ ॥
सीम्नि तस्यां जनैरल्पैः सहादानप्रदानयोः ।
व्यवस्थायां च लिप्तेऽस्मिन् मनुष्ये भवबंधनम् ॥ ३ ॥
सीमाबंधनमेतत्स्यान्मानवस्य स्थितिस्तु तम् ।
कूपमंडूकतामेषा नेष्यतीह न संशयः ॥ ४ ॥
तदा देशस्य धर्मस्य समानायाश्च संस्कृतेः ।
विषये नहि कोऽप्यत्र चिंतयिष्यति मानवः ॥ ५ ॥
भ्रमोऽयं च समुत्पन्नो यदि चित्ते तु कस्यचित् ।
तं भ्रमं तु निराकर्तुं समायाताऽनिवार्याता ॥ ६ ॥
टीका—महर्षि धौम्य सोचने लगे, परिवार की इतनी महत्ता बताने के कारण कहीं श्रवणकर्त्ताओं को यह मतिभ्रम न होने लगे कि घर की चहारदीवारी तक ही उनके कर्तव्य उत्तरदायित्व सीमित हैं । उतनी ही परिधि में थोड़े से लोगों के साथ आदान-प्रदान करते रहने भर में यह मनुष्य लिप्त हो गया, तो फिर वह सीमा बंधन का काम करेगा मनुष्य की स्थिति कूप-मंडूक जैसी बना देगा, इसमें जरा भी संदेह नहीं । तब कोई देश, धर्म, समाज, संस्कृति की बात सोचेगा ही नहीं । यह भ्रम यदि मेरे प्रतिपादनों से किसी को हुआ हो, तो उसका निराकरण समय रहते करने की आवश्यकता है ॥ १-६ ॥

गृहान् स्वान् परिवारं च मन्येतात्र नरः सदा ।
विद्यालयमिवाथापि व्यायामभवनं पुनः ॥ ७ ॥
क्षेत्रेऽस्मिंश्च लघावाप्ता उपलब्धीर्नियोजयेत् ।
हिते लोकस्य चात्रैव विद्यते नरजन्मनः ॥ ८ ॥
सार्थक्यं परमेशस्य निहिताऽत्र प्रसन्नता ।
प्रसन्ने परमेशे च न किमप्यस्ति दुर्लभम् ॥ ९ ॥
संसार एव ब्रह्मास्ति विराट्क्षेत्रेऽत्र मानवाः ।
स्वशक्तेः पुण्यबीजानि मुक्तहस्तं वपंतु ते ॥ १० ॥
विश्वसेदपि चैतत्स्यात् सहस्रं परिवर्द्धितम् ।
श्रेयसां परिणामे च यन्नरैरिष्य ते सदा ॥ ११ ॥
धौम्योऽथ निश्चिकायैतद्दातुं प्रोत्साहनं तथा ।
परामर्शं तु तान् सर्वान् सदस्यान् भवितुं स्वतः ॥ १२ ॥
विश्वस्य परिवारस्य व्यवस्था विषयेऽस्य च ।
योगदानं विधातुं स्यादपूर्णं यद्विना त्विदम् ॥ १३ ॥
तेन चापूर्णभावेन भ्रांत्युत्पत्तेरथापि च ।

प्रगतेरवरोधस्य भयं तत्रोदितं महत् ॥ १४ ॥

उपस्थितांश्च जिज्ञासून् प्रतिगंभीरमुद्रया ।

धौम्यः स्वकथनञ्चैवं प्रारब्धं स व्यधाच्छुभम् ॥ १५ ॥

टीका—घर परिवार को व्यायामशाला, पाठशाला के समान माना जाना चाहिए । उस छोटे क्षेत्र में उपार्जित उपलब्धियों को लोकहित में नियोजित करना चाहिए । इसी में मनुष्य जन्म की सार्थकता और ईश्वर की प्रसन्नता सन्निहित है । परमेश्वर के प्रसन्न होने पर कुछ भी दुर्लभ नहीं है । यह संसार ही विराट् ब्रह्म साकार परमेश्वर है । इसके खेत में अपनी क्षमताओं को जी खोलकर बोना चाहिए और बदले में हजार गुने श्रेय सत्परिणामों का विश्वास रखना चाहिए और मानव मात्र का अभीष्ट भी यही है । आज धौम्य ने विश्व परिवार का नागरिक रहने विश्व-व्यवस्था को सँभालने में भाव भरे योगदान देने के लिए परामर्श प्रोत्साहन देने का निश्चय किया । इसके बिना सत्र का शिक्षण अधूरा ही रह जाता । उस अधूरेपन के कारण भ्रांति उत्पन्न होने, प्रगति उत्पन्न होने और रुक जाने का भी भय था । धौम्य ने उपस्थित जिज्ञासुओं की ओर उन्मुख होकर गंभीर मुद्रा में अपना मंगलमय कथन आरंभ किया ॥ ७-१५ ॥

चिंतन की परिधि यदि अपने पारिवारिक परिजनों तक ही सीमित रहे, तो व्यक्ति समुदाय का एक अंग होते हुए भी अपने दायित्वों का अहसास न होने के कारण उपार्जन-उपभोग में ही जीवन किसी तरह काटकर अपने कर्तव्यों की इतिश्री समझ लेता है । वस्तुस्थिति यह है कि समाज के एक-एक घटक ने परिवार संस्था के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । एकाकी कोई नहीं जी सकता, न ही पनप सकता है । ऐसे में इक्कड़, स्वार्थप्रधान जीवन जीने वाले व्यक्ति संस्कृति, समुदाय, विश्ववसुधा के लिए कलंक ही सिद्ध होते हैं ।

गृहस्थ जीवन, नारी, शिशु एवं वृद्धजन प्रकरणों को अपने तर्क सम्मत विवेचन द्वारा प्रस्तुत करने वाले महर्षि धौम्य का यह अनुमान सत्य ही है कि जानकारी के अभाव में कहीं भ्रांतियाँ न पनपने लगे । इसी कारण वे विचारते हैं कि परिवार के सदस्यों को बताया जाना चाहिए कि उनका कार्यक्षेत्र कितना विशाल है । जिन गुणों का अभ्यास गृहस्थाश्रम में करने हेतु उन्हें प्रेरित किया गया, उन्हें समष्टि में संव्याप्त विराट् ब्रह्म रूपी विश्व परिवार में भी लागू किया जाना चाहिए यह समझे बिना सारा प्रतिपादन अधूरा है । किसान अपने खेत में थोड़े से गेहूँ के दाने बोकर पूरे खेत में लहलहाती फसल काटता है । यही बोने व काटने की प्रक्रिया हर व्यक्ति को सत्प्रवृत्ति विस्तार के माध्यम से समग्र समाज पर लागू

करनी चाहिए। आराधना की यह प्रक्रिया प्रकारांतर से उसकी विश्व ब्रह्मांड के सभी घटकों के प्रति उक्तृण होने के रूप में संपन्न होनी चाहिए। इसी में उसका गौरव और बड़प्पन है।

धौम्य उवाच—

पारिवारिकभावं तु जानीयात्संगमं शुभम्।
समन्वयकृतं यत्र धार्मिकत्वमथापि च ॥ १६ ॥
आध्यात्मिकत्वमास्तिक्यं तत्त्वत्रयमपि स्थितम्।
साधनोपासनाऽऽराधनानां सिद्धिर्यतो भवेत् ॥ १७ ॥
एनमाश्रित्य व्यक्तेश्च चरित्रं चिन्तनं तथा।
व्यवहारस्तरोऽभ्येति नित्यमेवोन्नतिं स्थिराम् ॥ १८ ॥
परिवारस्तु प्रत्यक्षं शोधशालेव वर्तते।
तत्र सम्मिलितैः सर्वैः सदस्यैराप्यतेऽनिशम् ॥ १९ ॥
कालः कौटुंबिकान् सर्वानादर्शाञ्जातुमप्यथ।
व्यवहर्तुं यदाश्रित्य पदमायते कुटुंबगाः ॥ २० ॥
सञ्चालयन्ति ये तस्य सूत्रं तेषां गुणेऽथ च।
स्वभावे कर्मणीहास्ति विशेषा हि परिष्कृतिः ॥ २१ ॥
उन्नतस्तरमेतच्च परिवर्तनमद्भुतम्।
प्रवृत्तिमेनां स्वीकृत्य मानवो बुद्धिमत्तमः ॥ २२ ॥
समर्थः प्रोन्नतश्चात्रापेक्षया ह्यन्यप्राणिनाम्।
जातः कारणमस्यास्ति पारिवारिकपद्धतिः ॥ २३ ॥
नाभविष्यदिदं तस्मिन् वैशिष्ट्यं तर्हि सोऽपि तु।
जीर्णप्राणिस्थितौ प्राणानकरिष्यद्धि यापितान् ॥ २४ ॥

टीका—धौम्य ने कहा, पारिवारिकता को एक ऐसा समन्वय संगम समझना चाहिए, जिसमें आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता के तीनों ही तत्वों का समावेश है। इसे सही रूप से अपनाने पर उपासना, साधना और आराधना के तीनों ही प्रयोजन पूर्ण होते हैं। इसके सहारे व्यक्ति का चिंतन, चरित्र और व्यवहार का स्तर ऊँचा उठता है। परिवार एक प्रत्यक्ष प्रयोगशाला है, उसमें सम्मिलित रहने वाले सदस्यों को पारिवारिकता के आदर्शों को व्यवहार रूप में समझने, अपनाने का अवसर मिलता है। यही वह आदर्श है, जिसे अपनाने पर परिवार के सदस्य कमल पुष्प बन, विकसित होते हैं। जो उसका सूत्र संचालन करते हैं, उनके गुण, कर्म, स्वभाव में उच्चस्तरीय परिवर्तन परिष्कार संभव होता है। इस प्रवृत्ति को अपनाकर ही मनुष्य अन्य प्राणियों की तुलना में अधिक समर्थ, बुद्धिमान एवं प्रगतिशील बन सका, इसका प्रमुख कारण उसकी पारिवारिकता अपनाने वाली प्रवृत्ति ही है। यदि यह विशेषता न रही होती, तो उसे भी अन्य दुर्बलकाय प्राणियों की तरह गई-गुजरी स्थिति में जीवन व्यतीत करना पड़ता ॥ १६-२४ ॥

परिवार संस्था एक ऐसा संगठन है, जिसमें मनुष्य अध्यात्म दर्शन एवं व्यवहारिक जीवन साधना के महत्वपूर्ण सोपानों

को सीखता, जीवन में उतारता एवं उन्हें समाज परिवार में क्रियान्वित कर अपना मनुष्य जीवन सार्थक करता है। आस्तिकता अर्थात् निराकार परमसत्ता को विश्व ब्रह्मांड रूप में समाएँ होने की मान्यता को स्वीकार करना, आध्यात्मिकता अर्थात् स्व के संबंध में अपनी परमात्मा के वरिष्ठ पुत्र होने की स्थापना को परिपक्व बनाना एवं धार्मिकता अर्थात् विश्व उद्यान को श्रेष्ठ समुन्नत बनाने हेतु अपने सत्कर्मों को नियोजित कर देना। ये तीनों ही उपादान परिवार में रहकर भली-भाँति संपन्न होते रह सकते हैं। प्रकारांतर से ये ही उपासना, साधना, आराधना के क्रमशः पर्यायवाची हैं। इन्हीं से व्यक्ति महान् अथवा दुर्बल बनता है। पारिवारिकता एक दर्शन है, जिसे अपनाकर व्यक्ति स्वयं अपने चिंतन, चरित्र एवं व्यवहार को परिष्कृत करता एवं अपने माध्यम से अन्य अनेकों को ऊँचा उठाता, प्रगति पथ पर बढ़ाता है।

कुटुम्बं स्वं गृहस्थस्य सीमितं परिधौ सदा।

तिष्ठतीह तदाधारं कुलं तच्च कुटुंबकम् ॥ २५ ॥

विद्यन्ते तस्य नूनं च महत्ताऽथोपयोगिता।

आवश्यकत्वमत्रैवं दायित्वं मौलिकं शुभम् ॥ २६ ॥

परं ज्ञातव्यमेतन्न पारिवारिक एष च।

आदर्शः सीमितः क्षेत्रे लघावियति केवलम् ॥ २७ ॥

व्यापकः स च धर्मस्य दर्शनस्येव विद्यते।

परिधौ मीयते तस्य जगदेतच्चराचरम् ॥ २८ ॥

समाजरचनाऽप्येषा जाता सिद्धांततो भुवि।

परिवारस्थितिः वीक्ष्य राष्ट्राणां घटनं तथा ॥ २९ ॥

सिद्धांतोऽयं धरायां च सम्यग्रूपेण संस्थितः।

यावत्तावद् भुवि स्वर्गतुल्या वातावृत्तिः स्थिता ॥ ३० ॥

ये मनुष्याः सदादर्शमिमं जानन्त एव च।

व्यवहारे यथाऽगृह्णन् महत्त्वं ते तथाऽऽप्नुवन् ॥ ३१ ॥

विभूतीरधिजग्मुस्त उत्तमोत्तमतां गताः।

साधु विप्रस्तरा वानप्रस्थस्तरगताः समे ॥ ३२ ॥

ओतप्रोता नरा आविर्भावनाभिर्निरंतरम्।

सर्वान् स्वान् मन्वते ते च पश्यन्तीह स्वयादृशा ॥ ३३ ॥

निरीक्षन्ते च यत्राऽपि दृश्यन्ते स्वे समेऽपि च।

आत्मभावोऽयमेवात्र कुटुंबत्वस्य लक्षणम् ॥ ३४ ॥

टीका—निजी परिवार घर गृहस्थी की परिधि में सीमित रहता है। उसका आधार वंश कुटुंब है। उसकी भी अपनी महत्ता, उपयोगिता, आवश्यकता एवं जिम्मेदारी है, पर यह न समझना चाहिए कि पारिवारिकता का आदर्श इतने छोटे क्षेत्र में ही सीमित होकर रह जाता है। उसकी परिधि में यह सारा चराचर संसार समा जाता है। समाज की संरचना परिवार सिद्धांत पर हुई है। राष्ट्रों का गठन भी इसी आधार पर हुआ है। यह सिद्धांत जब तक सही रूप में अपनाया जाता रहा,

३.५२ प्रज्ञोपनिषद्

तब तक इस धरातल पर स्वर्गोपम सतयुगी वातावरण बना रहा। जिन मनुष्यों ने इस आदर्श को जितना समझा और व्यवहार में उतारा, वे उसी अनुपात में महान् बनते चले गए। उन्हें एक से एक बढ़कर महान् विभूतियाँ उपलब्ध होती रहीं। साधु, ब्राह्मण, वानप्रस्थ स्तर के परमार्थ परायण व्यक्ति इसी भावना से ओत-प्रोत होते हैं। वे सबको अपना मानते हैं। आत्मीयता की दृष्टि से देखते हैं। जिधर भी आँख परसारते हैं सभी अपने देखते हैं। यह आत्मभाव ही पारिवारिकता का प्रधान लक्षण है ॥ २५-३४ ॥

जो पारिवारिकता के दर्शन को अपने दैनंदिन जीवन व्यवहार में उतारते हैं, वे बदले में उतना ही प्रेम, श्रेय, सम्मान पाते हैं। सब अपने हैं, हम सबके हैं। दूसरों का दुःख कष्ट ही हमारा दुःख है। यदि ये भावनाएँ जीवन्त रहें तो सारी वसुधा ही अपना परिवार लगती है। अपना कार्यक्षेत्र सारा समाज, राष्ट्र एवं विश्व वसुधा हो जाता है। परिवार के परिजनों, विशेषकर वानप्रस्थों के लिए तो यह आदर्श जीवन साधना का एक अनिवार्य अंग है।

व्यक्ति जिस वंश परिवार में जन्म लेता है, उसी तक उसके दायित्व हैं, यह मान्यता त्रुटिपूर्ण है। इस संबंध में व्याप्त भ्रांतियों को मिटाया जाना चाहिए, ताकि लोगों की उदार परमार्थ-परायणता विकसित हो एवं वे अपनी कार्य परिधि का विस्तार करें।

गतिशीलसमाजानां रचना घटनं तथा।
परिवारे विशाले च भवतोऽत्रानुशासनम् ॥ ३५ ॥
नियमाश्च विधीयन्ते तदाश्रित्य नरैः सदा।
वितरणस्य रक्षायाः क्रमोऽनेन चलत्यलम् ॥ ३६ ॥
सिद्धांतमिममाश्रित्य तथा राष्ट्रमपीदृशः।
व्यवस्था प्रमुखो नूनं समाजो विद्यते स्वतः ॥ ३७ ॥
दत्त्वा विश्वकुटुंबस्य मान्यतामग्रिमेषु च।
दिनेषु नियमाः सर्वे तथा निर्धारणानि च ॥ ३८ ॥
निर्मेयानि समानश्च सोऽधिकारो नृणामिह।
वसुमत्यां तथाऽस्याश्च खनिजेषु समेष्वपि ॥ ३९ ॥
क्षेत्रजासु च सीमासु संकोचमधिगत्य यः।
क्रमो विश्वविभूतेस्तु केषांचिद्धि नृणां कृते ॥ ४० ॥
बाहुल्यत्वेन केषांचित् स्वल्पत्वेन च सांप्रतम्।
चलत्येष भवेन्नायमागामिदिवसेषु तु ॥ ४१ ॥
संयुक्ता संपदाऽत्रास्ति कुटुंब उपयुज्जते।
यां समेष्यनिवार्याणां व्ययानां च प्रसंगतः ॥ ४२ ॥
नहि कश्चिद् विशेषं स्वमधिकारं वदत्यथ।
वञ्चितो नहि कश्चिच्च जायतेचाधिकारतः ॥ ४३ ॥

टीका—प्रगतिशील समाजों की संरचना और संगठन विशाल परिवार के रूप में होता है। उसी आधार पर नियम

अनुशासन बनते हैं। वितरण और संरक्षण का क्रम भी इसी सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए चलता है। राष्ट्र भी व्यवस्था प्रधान समाज ही है। विश्व परिवार की मान्यता अपनाकर ही अगले दिनों नवयुग के समस्त नियम निर्धारण बनेंगे। धरातल और उसकी खनिज संपदा पर मानव समाज के समस्त सदस्यों का समान अधिकार होगा। क्षेत्रीय सीमाओं में बँधकर विश्व संपदा को किन्हीं के लिए बहुत और किन्हीं के लिए नगण्य होने का जो क्रम इन दिनों चल रहा है, वह अगले दिनों न रहेगा। परिवार में संयुक्त संपदा होती है और उसका उपयोग सभी अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप कर सकते हैं। न कोई विशेष अधिकार जताता है और न किसी को वंचित रहना पड़ता है ॥ ३५-४३ ॥

यहाँ आध्यात्मिक साम्यवाद की रूपरेखा स्पष्ट करते हुए ऋषि कहते हैं कि सभी का हित इसमें है कि सब मिल-जुलकर एक विशाल कुटुंब के परिजन के रूप में विकसित हों। परिवार राष्ट्र की एक छोटी इकाई है। ऋषि सत्ता का यह संकल्प है कि पारस्परिक मतभेद विग्रह मिटें एवं सारे विश्व में एक कौटुंबिक भावना का विकास हो। जो भी कुछ उपार्जन है, सबका मिलकर है, वह किसी एक की संपदा नहीं, यह स्पष्ट जान लेना चाहिए। विश्व परिवार में उपभोग हेतु सभी स्वतंत्र हैं। जैसे कि किसी परिवार में सभी सदस्य अपनी-अपनी सीमा मर्यादा में रहकर जिम्मेदारी भी निभाते हैं एवं उपार्जन का आनंद भी लेते हैं, उसी प्रकार बृहत्तर परिवार के रूप में, कम्यून के रूप में संस्थाएँ विकसित होनी चाहिए। इसी में विश्व मानवता का कल्याण है। इसके लिए अंतः की सदाशयता तो विकसित करनी ही होगी परस्पर एक दूसरे के चिंतन से संगति बिठाते हुए अपने व्यवहार को भी लचीला बनाना होगा। सारे पूर्वाग्रह, दुराग्रह मिटाकर अपने चिंतन के दायरे को विस्तृत करना होगा, ताकि विश्व परिवार की परिकल्पना साकार रूप ले सके।

इस समन्वयवाद का मूल वेदों में स्पष्ट रूप से मिलता है। ईशोपनिषद् के प्रथम मंत्र में ही मानव जीवन की सफलता, सार्थकता का जो मार्ग बतलाया गया है, उसमें समन्वय का सार आ गया है। ऋषि कहते हैं

ईशावास्यामिद् सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

अर्थात् इस विश्व में जो कुछ भी दिखाई पड़ता है, वह सब ईश्वर से व्याप्त है, इसलिए उसका उपयोग त्यागपूर्वक करो, धन किसी एक का नहीं हो सकता।

शास्त्रों में स्पष्ट कहा गया है कि यह समस्त संसार भगवान् का है, किसी एक व्यक्ति का नहीं, अतः इसकी वस्तुओं पर अनुचित रीति से अधिकार न जमाकर उसे समाज

हित में सदुपयोग किया जाए। समाज के हित में ही अपना हित समझा जाना चाहिए। सामूहिकता की भावना को विकसित करके ही समष्टि में विश्व विराट् में विस्तार पाना सुनिश्चित है।

परिवारे समर्थाश्चासमर्थाः सर्व एव हि।
यथाशक्ति श्रमं कृत्वा लाभं यान्ति तथेप्सितम् ॥ ४४ ॥
भवत्येष कुटुंबस्य स्तरश्च समतां गतः।
भेदः संपन्नतायाः स दारिद्र्यस्याऽपि नास्ति च ॥ ४५ ॥
संयुक्ताऽस्ति समेषां च संपत्तिः समये तथा।
विशेषे पूर्यते वाञ्छाऽनिवार्या तत एव च ॥ ४६ ॥
निर्वाहः स च सामान्यः सर्वेषां भवतीह च।
आगामिषु दिनेष्वेतत् भवेत् प्रचलनं सदा ॥ ४७ ॥
संपदा स्यात्समाजस्य समैर्नागरिकैः स्तरः।
समान एव स्वीकार्यो निर्वाहस्य भविष्यति ॥ ४८ ॥
न कश्चिद् धनवान्नैव निर्धनो वा भविष्यति।
धरित्र्याश्च सुताः सर्वे महतो मनुजन्मनाम् ॥ ४९ ॥
कुटुंबस्य सदस्यत्वं गताः प्राप्स्यन्ति निश्चितम्।
साधनानि समानानि सम्मानं सममेव च ॥ ५० ॥

टीका—परिवार में समर्थ-असमर्थ अपनी क्षमता के अनुरूप श्रम करते और आवश्यकता के अनुरूप लाभ लेते हैं। पूरे परिवार का स्तर एक जैसा होता है। इनमें किसी में भी दरिद्र या संपन्न होने जैसा भेदभाव नहीं देखा जाता। संपत्ति सब की संयुक्त होती है। विशेष अवसरों पर उसी संचय में से सबकी विशेष आवश्यकताएँ भी पूरी होती रहती हैं। सामान्य निर्वाह तो सबका एक जैसा होता है। अगले दिनों यही प्रयत्न चलेगा। संपदा समाज की होगी। सभी को औसत नागरिक स्तर का निर्वाह अपनाना पड़ेगा। न कोई धनी बन सकेगा और न निर्धन रहेगा। धरती माता के सभी पुत्र एक विशाल मानव परिवार के सदस्य बनकर एक समान सम्मान एक समान साधन उपलब्ध करेंगे ॥ ४४-५० ॥

वृहत् परिवार में असमानता नहीं होनी चाहिए। किसी को, अधिक सुविधा मिले, किसी को कम, यह नीति हर दृष्टि से असंतोष विग्रह पैदा करती है इसलिए परिवार संस्था में सभी को आवश्यकतानुसार समान रूप से साधन उपलब्ध रहते हैं। विशेष रूप से यह तैयारी मानसिक धरातल पर एवं अंतःकरण के स्तर पर अभी से ही हो जाना चाहिए। हर व्यक्ति एक दूसरे के प्रति अधिक से अधिक उदार हो, अपने प्रति कठोर हो एवं सादगी अपनाता हो, तो वह परिवार संस्था आदर्श रूप में विकसित होती है। आने वाले समय को दृष्टि में रखते हुए यह प्रचलन अभ्यास रूप में अभी से लाया जाना अनिवार्य हो गया है। इसी में सबकी भलाई है।

लघूनां परिवाराणां भाषा संस्कृतिरेव च।

भवत्येकैव विश्वस्मिन् भाषाऽऽगामि दिनेषु तु ॥ ५१ ॥
प्रयुक्तास्यादि हैकस्या मानव्याः संस्कृतेरथ।
अनुरूपं चिन्तनं स्याद् भवेच्च चरितं तथा ॥ ५२ ॥
एक एव च धर्मः स्याद् विश्वस्मिन् सकलेऽपि ते।
नियमास्तु समानाः स्युर्मानवेषु समेष्वपि ॥ ५३ ॥
निर्विशेषं च ये तत्र प्रभविष्यन्ति पूर्णतः।
अनुशासनमप्येवं निर्विशेषं भविष्यति ॥ ५४ ॥
अवसरस्तत्र भेदानां कृते नैव भविष्यति।
यमाश्रित्य समर्थानां हस्तगाः सुविधाः समाः ॥ ५५ ॥
भवेयुस्तेऽसमर्थाश्च दुर्भाग्याय तथाऽऽत्मनः।
द्रुह्यन्तु रोगशोकार्तिपीडिताः संतु जीवने ॥ ५६ ॥
क्षेत्राणां च निजानां वा वर्गाणां च कृतेऽधुना।
सन्ति प्रचलनान्यत्र निर्मीयन्तेऽपि यानि च ॥ ५७ ॥
संसारपरिवारे च निर्मिते स्युर्न ते क्वचित्।
व्यवस्था वाऽथ मर्यादा स्यातामत्र विनिर्मिताः ॥ ५८ ॥
उभे भुवः क्वचित्कोणे वसत्सु नृषु पूर्णतः।
वंशजात्यादि भेदाच्च रहिते प्रभविष्यति ॥ ५९ ॥
तत्र वर्गविशेषस्य हितानां न भविष्यति।
ध्यानं विश्वव्यवस्थायाः सौविध्यस्यैव केवलम् ॥ ६० ॥

टीका—छोटे परिवार की भाषा एवं संस्कृति एक होती है। अगले दिनों विश्व भर में एक भाषा बोली जाएगी। एक मानव संस्कृति के अनुरूप सभी का चिंतन और चरित्र ढलेगा। एक धर्म पलेगा। समस्त संसार पर मनुष्य मात्र घर लागू होने वाले एक जैसे नियम अनुशासन बनेंगे। ऐसे भेदभावों की कोई गुंजाइश न रहेगी, जिनकी आड़ में समर्थों के हाथ में विपुल सुविधा रहे और असमर्थ दुर्भाग्य को कोसते रहें तथा जीवन भर रोग-शोक दुःख से पीड़ित रहें। अपने-अपने क्षेत्रों और वर्गों की सुविधा के लिए इन दिनों जो प्रचलन बनते और चलते हैं, वे विश्व परिवार बनने पर कहीं भी दृष्टिगोचर न होंगे। जो भी व्यवस्था या मर्यादा बनेगी वह धरती के किसी भी कोने में रहने वाले किसी भी जाति वंश एवं लिंग के व्यक्ति के ऊपर समान रूप से लागू होगी। उसमें विशेष वर्गों के विशेष हितों का नहीं, विश्व व्यवस्था और सर्वजनीन सुविधा का ध्यान रहेगा ॥ ५१-६० ॥

हम अमुक समाज के राष्ट्र के निवासी हैं। हमारे दायित्व देश की सीमा तक ही सीमित हैं। नीति-अनीति जैसी भी बने देश के हित के लिए किया जाना चाहिए। राष्ट्रों की इस संकीर्ण स्वार्थपरतायुक्त नीति के कारण ही परस्पर विग्रह खड़े होते हैं और तनाव बढ़ते हैं। स्वस्थ राष्ट्रीय भावना देश के विकास के लिए उपयोगी भी है और आवश्यक भी, किंतु यह भावना जब इसी परिधि तक सीमित हो जाती है तो विश्व शांति को आघात पहुँचता है, एवं वसुधैव कुटुंबकम् की

३.५४ प्रज्ञोपनिषद्

स्थिति नहीं आने पाती।

प्रज्ञा युग में जो आने वाले समय की एक सुनिश्चित संभावना है, सभी लोग विश्व को अपने एक विशाल घर के रूप में देखते हुए विश्वव्यवस्था में अपना भाव भरा योगदान देंगे। प्रचलनों के प्रति दुराग्रह मिटेंगे एवं सब ओर सभी में एकता, समानता और बंधुत्व की भावना जागृत होकर विश्वव्यापी बनेगी और समाज-शिल्पी ऋषियों की वह अमृतमय वाणी स्थान-स्थान पर जन-जन के मन में गुंजित, मुखरित, प्रतिध्वनित और कार्यान्वित होती देखी जाएगी जिसमें उन्होंने हमें आदेश देते हुए कहा है

संगच्छध्वम् संवदध्वम् तुम्हारी गति और वाणी में एकता हो। समानो प्रजा सहवोऽन्तर्भागः तुम्हारी खाने-पीने के स्थान व भाग एक जैसे हों। समानो मंत्रः समितिः समानी तुम्हारी सभी समितियाँ एक समान हों और तुम्हारे विचारों के सामंजस्य में एकरूपता हो। समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः। तुम्हारे हृदय के संकल्प व भावनाएँ एक सी हों।

अज्येष्ठासोऽकनिष्ठासः सं भ्रातरो वावृधु सौर्भगाय हम सब प्रभु की संतान एक दूसरे के भाई-भाई हैं। हममें न कोई छोटा न कोई बड़ा। हम सब एक हैं, यह उत्कृष्ट भावना ही मनुष्य को विश्व विराट में समाकित करने वाली और अविजेय बनाने वाली है। भेदभावों का मिटना इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

सेनया विश्वराष्ट्रस्य कार्यं सेत्स्यति चैकया।

मतभेदा निरस्ताः स्युः पञ्चायतननिर्णयात् ॥ ६१ ॥

युद्धानि विश्वसेना च रोत्स्यति सर्वतः स्वयम्।

तत्तत्स्थानव्यवस्था तु कृता स्याद्राजपूरुषैः ॥ ६२ ॥

ईदृश्यां च स्थितावत्र सैन्यसाधनसंभवः।

व्ययोऽनपेक्षितः स्यात्सहितमेतन्महन्नुणाम् ॥ ६३ ॥

प्रयोजनेषु चैतेषु राशियाँ विपुलोऽधुना।

व्ययमेत्यवशिष्टं तं शिक्षायां स्वच्छताविधौ ॥ ६४ ॥

स्वास्थ्य उद्योग एवं च कृषिसिञ्चनकेऽथवा।

उत्पादनेष्वनेकेषु चोपयोक्ष्यति पूर्णतः ॥ ६५ ॥

ईदृश्यां च दशायां हि संकटाभावविग्रहाः।

दृग्गोचरा भविष्यति नैव कुत्राऽपि कर्हिचित् ॥ ६६ ॥

दरिद्राः पतिता रुग्णा उद्विग्ना मानवा नहि।

द्रष्टुं शक्या धरायां तु कुत्रचित्केनचिदधुवम् ॥ ६७ ॥

पारिवारिकभावे च याते व्यापकतां तथा।

सर्वत्र स्वीकृते सत्ययुगः स आगमिष्यति ॥ ६८ ॥

प्रत्येकस्मिन् मनुष्ये च द्रक्ष्यते दैवमुत्तमम्।

औत्कृष्ट्य विपदो जाता समस्याभीतयस्तथा ॥ ६९ ॥

व्यग्रभावादतश्चात्र कुटुंबादर्शस्वीकृतौ।

अवाञ्छितेभ्य एतेभ्यो रिक्तं स्थानं न संभवेत् ॥ ७० ॥

टीका—विश्वराष्ट्र की एक सेना रहने से काम चल जाएगा। मतभेदों को पंचायतों के माध्यम से सुलझाया जाएगा। युद्धों को विश्व सेना रोकेगी। स्थानीय व्यवस्था भर के लिए क्षेत्रीय पुलिस से काम चल जाया करेगा। ऐसी दश में सैन्य साधनों पर होने वाले खर्च की तनिक भी आवश्यकता न रहेगी और यह मनुष्यों का बहुत बड़ा हित होगा। उस प्रयोजन के लिए इन दिनों जो विपुल राशि खर्च होती है, उसे बचाकर शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, सिंचाई, उद्योग, विविध उत्पादन आदि में लगाया जा सकेगा। ऐसी दशा में न कहीं अभाव, संकट और विग्रह दृष्टिगोचर होंगे और न मनुष्यों को दरिद्र, पतित, रुग्ण स्थिति में देखा जा सकेगा। पारिवारिकता की विधा व्यापक बनने और सर्वत्र अपनाई जाने पर फिर सत्ययुग की वापसी संभव हो सकेगी। हर मनुष्य में देवताओं जैसी उत्कृष्टता के दर्शन होंगे। विपत्तियाँ, समस्याएँ और विभीषिकाएँ तो आपा धापी के कारण उत्पन्न हुई हैं। पारिवारिकता का आदर्श अपनाने पर इस अवांछनीयता के लिए कहीं कोई स्थान रह नहीं जाएगा ॥ ६१-७० ॥

ऋषि श्रेष्ठ यहाँ सत्ययुग की, प्रज्ञायुग की एक झाँकी दिखाते हुए व्यक्त करते हैं कि वर्तमान विपत्तियों से भरी परिस्थितियाँ तभी मिटेंगी, जब विश्व में एकत्व एवं ममत्व के आधार पर पारिवारिकता की पृष्ठभूमि बनने लगेगी। जब हर व्यक्ति एक दूसरे में स्वयं को ही प्रतिबिंबित देखेगा, दूसरों का दुःख दर्द अपना लेगा, तो विग्रह एवं अभावजन्य विभीषिकाओं के घटाटोप स्वयं ही दूर हो जाएँगे। मनुष्य का देवत्व जगेगा एवं धरती पर स्वर्गोपम परिस्थितियाँ विनिर्मित होंगी।

सहृदयता की अंतःस्थिति व्यापक बनने पर उद्धत महत्वाकांक्षाओं के कारण होने वाले, क्षेत्रीय परिधि के विस्तार को लेकर लड़े जाने वाले युद्ध स्वतः रुक जाते हैं एवं करुणाशक्ति प्रज्ञा उसका स्थान ले लेती है।

विनाशसंकटाश्चात्र महाप्रलयसदृशाः।

दृश्यते वर्द्धमानास्तु गर्जतः सर्वतो भुवि ॥ ७१ ॥

पारिवारिकतावायौ चलतीह न कुत्रचित्।

सत्ताज्ञानं भवेदेषा प्रातर्जातेऽरुणोदये ॥ ७२ ॥

तिरोहितं तमो नृणां पश्यतां जायते यथा।

तथा विश्वकुटुंबस्य भावनायाः शुभोदये ॥ ७३ ॥

जातेऽथापि व्यवस्थायां निर्मितायां भवेन्नहि।

त्रास उद्विग्नको येन दैन्यगाः स्युरंरा बलात् ॥ ७४ ॥

टीका—महाप्रलय जैसे विनाश संकट इन दिनों पृथ्वी में सर्वत्र घुमड़ते-गरजते दीखते हैं। उनमें से एक का भी पारिवारिकता का पवन चलते ही कहीं पता न चलेगा। प्रातःकाल का अरुणोदय होते ही अंधकार देखते-देखते ही तिरोहित हो

जाता है। उसी प्रकार विश्व परिवार की भावना जगने और व्यवस्था बनने पर वैसा कोई त्रास रहेगा नहीं, जो मनुष्य को खिन्न, उद्विग्न करे और उसे गई गुजरी स्थिति में रहने के लिए विवश करे ॥ ७१-७४ ॥

यहाँ ऋषि प्रवर जन सामान्य को आश्वासन देते हैं कि इन दिनों पृथ्वी पर सर्वत्र संव्याप्त विभीषिका महाप्रलय जैसे विनाश संकट जो प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वह मानवीय सदबुद्धि विवेक के जागृत होते ही तिरोहित हो जाएँगे। विश्व परिवार, विश्व बंधुत्व की भावना जागृत होने और तदनुरूप व्यवस्था बनाने पर सभी एक दूसरे की प्रगति उत्थान के लिए ही कार्य करते देखे जाएँगे। गायत्री मंत्र के अंतिम चरण में अपनी निज की ही नहीं, समस्त समाज की प्राणी मात्र की यथार्थ प्रगति की कामना की गई है और परम सत्ता से प्रार्थना की गई है कि सर्वतोमुखी प्रगति की आधार शिला सदबुद्धि विवेक को हम सबके अंतःकरण में प्रतिष्ठापित करें। ऋतंभरा प्रज्ञा की शरण में हमारी अंतःचेतना को नियोजित कर दें। सन्निकट एवं सुनिश्चित संभावी प्रज्ञायुग में उसी को प्राप्त करने के लिए जन-जन के मन में उत्कट-उत्कृष्ट आकांक्षा, आतुरता एवं तत्परता की भावना दिखाई देगी और लोग वसुधैव कुटुंबकम् की भावना से ओत-प्रोत होकर कार्य करेंगे, तब समस्त समाज में अमन-चैन एवं सुख-शांति का वातावरण बनेगा।

केवलं न मनुष्या हि विश्वस्य परिवारगाः ।

पशवः पक्षिणश्चात्र संगताः संति पूर्णतः ॥ ७५ ॥

निर्दयत्वस्य चाऽनीतेरंतः स्याच्च तदैव तु ।

तेषामपि ययोरत्र व्यवहारस्तु तैः सह ॥ ७६ ॥

क्रियते मनुजैः क्रूरैर्यदास्युर्भावनाः शुभाः ।

कौटुंबिकस्य सर्वत्र विस्तृतास्तु गृहे गृहे ॥ ७७ ॥

विश्वकल्याणमेतच्च संबद्धं ज्ञायतां ध्रुवम् ।

अविच्छिन्नतयामर्त्यकल्याणस्यातिशायिनः ॥ ७८ ॥

पारिवारिकता भावैः प्रक्रियां व्यापिकां ततः ।

विधातुं यतनीयं च मर्त्यविश्वकुटुंबजाम् ॥ ७९ ॥

भविष्यदुज्ज्वलं चैतत्सम्बद्धं च यया सह ।

अजस्रं सुखशांत्योश्च यत्रावतरणं तथा ॥ ८० ॥

टीका—विश्व परिवार में मात्र मनुष्य ही नहीं, पशु पक्षी भी सम्मिलित होते हैं। उनके साथ बरती जाने वाली अनीति, निर्दयता का अंत भी पारिवारिकता की भावनाओं का विस्तार होने पर ही बन पड़ेगा। विश्व कल्याण अति व्यापक मानव कल्याण की पारिवारिकता की भावना के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ समझा जाना चाहिए। विश्व परिवार की मानव परिवार की उस प्रक्रिया को व्यापक बनाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए, जिसके साथ उज्ज्वल भविष्य और अजस्र

सुख-शांति का अवतरण अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है ॥ ७५-८० ॥

विश्व परिवार की परिधि बहुत विशाल एवं व्यापक है। उसमें समस्त प्राणिजगत आ जाता है। मनुष्यों, जीव-जंतुओं, पशु-पक्षियों, वृक्ष-वनस्पतियों आदि का समुच्चय मिलकर एक विशाल परिवार का स्वरूप बनता है। अब नियंता की व्यवस्थानुसार चराचर में कौटुंबिक भावना का विस्तार होगा, तब न कहीं कलह रहेगी न विग्रह। सब एक दूसरे को प्यार करेंगे, सम्मान देंगे एवं परस्पर प्रतिद्वंद्विता छोड़कर एक दूसरे को ऊँचा उठाने, आगे बढ़ाने का प्रयास करेंगे। बदली हुई मनःस्थिति से वर्तमान में संव्याप्त विभीषिकाओं का घटाटोप निरस्त होता चला जाएगा और पारिवारिकता की विश्व वसुधा के हर जीवधारी को अपना मानने की भावना विकसित विस्तृत होगी, तब सतयुग की, प्रज्ञायुग की संभावनाएँ निश्चित ही साकार होने लगेंगी। चारों ओर सुख-समृद्धि के साथ शांतिमय वातावरण दृष्टिगोचर होगा और समस्त दिशाओं में शास्त्रोक्त वाणी

सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात् ॥

की शुभकामना जन-जन के अंतःकरण से प्रस्फुटित, प्रतिध्वनित और कार्यान्वित होती सुस्पष्ट देखी जा सकेगी। अतः आवश्यकता इस बात की है कि लोग तदनुरूप मनःस्थिति बनाकर नियंता के सृष्टि संचालक के विश्व वसुधा को समुन्नत बनाने में अपना भावभरा योगदान प्रस्तुत करें।

सत्रं साप्ताहिकं यस्मिन् परिवारप्रशिक्षणम् ।

कृतं धौम्येन तत्त्वद्य समाप्तं विधिपूर्वकम् ॥ ८१ ॥

कुंभस्नानार्थिनां नृणां कार्यकालोऽपि निश्चितः ।

पूर्ण आरण्यकं गन्तुं महर्षेरपि चेप्सितम् ॥ ८२ ॥

विसर्जनं ततश्चास्य ज्ञानयज्ञस्य निश्चितम् ।

कर्तुं विवशता जाता महर्षेः करुणात्मनः ॥ ८३ ॥

श्रोतारः स्वेषु चेतः सु सत्रसंयोजकस्य ते ।

भावपूर्णं व्यधुः सर्वेऽप्यभिनंदनद्य तु ॥ ८४ ॥

आत्मानं कृतकृत्यं चाप्यनयाऽमृतवर्षया ।

मेनिरे चित्तमेषां च श्रद्धा भावभृतं ह्यभूत् ॥ ८५ ॥

श्रुतं ज्ञातं च यत्तु करिष्यामः क्रियान्वितम् ।

प्रयोजनस्य सिद्धिः सा क्रियाधीनैव वर्तते ॥ ८६ ॥

उपदेशः परामर्शः केवलं मार्गदर्शनम् ।

उत्साहस्याथ सञ्चारे समर्थास्तु भवन्तु ते ॥ ८७ ॥

कथनाच्छ्रवणान्नैव कार्यं सिद्ध्यति कस्यचित् ।

संकल्पानन्तरं कार्यं कुर्यादेव क्रियान्वितम् ॥ ८८ ॥

टीका—महर्षि धौम्य का एक सप्ताह का परिवार शिक्षण सत्र आज विधिपूर्वक समाप्त हुआ। कुंभ स्नान के लिए आए

३.५६ प्रज्ञोपनिषद्

हुए लोगों का निर्धारित कार्यकाल भी पूरा हो गया। महर्षि को भी अपने आरण्यक आश्रम में जाना था। अस्तु, परमकारुणिक ऋषि को उस ज्ञान यज्ञ को समापन करने की विवशता थी। श्रोताओं ने मन ही मन सत्र संयोजक ऋषि का भाव-भरा अभिवंदन किया और अपने को इस अमृत वर्षा से कृतकृत्य हुआ माना। सभी का मन इस भाव श्रद्धा से भरा हुआ था कि जो सुना समझा है, उसे कार्यान्वित भी करेंगे। प्रयोजन की सिद्धि तो करने से होती है। उपदेश परामर्श तो मात्र मार्गदर्शन करते और उत्साह भरने तक के काम आते हैं। कथन श्रवण भर से कुछ काम नहीं चलता। कार्य को, संकल्प के बाद क्रियान्वित करना अनिवार्य है ॥ ८१-८८ ॥

भविष्यति च कुत्रस्यात्सत्रमेवं विधं कदा।

पुलकिता गमनोत्कास्ते पप्रच्छुः सादरं ततः ॥ ८९ ॥

उदतारीदृषिः सर्वे भवंतः पर्वजेषु हि ।

आयोजनेषु सर्वत्र संगताः स्युः सदैव तु ॥ ९० ॥

ईदृशी लोकशिक्षाया व्यवस्था तत्र प्रायशः ।

भवतीति समैस्तत्र लाभः प्राप्तव्य उत्तमः ॥ ९१ ॥

समापन समारोहे सर्वैरेव विशेषतः ।

उत्साहो दर्शितस्तत्र महर्षेर्दिव्य चक्षुषः ॥ ९२ ॥

प्रयोजनाय दिव्याय चानुदानानि तैर्नरैः ।

प्रस्तुतानि निजान्यत्र भावपूर्णानि विह्वलैः ॥ ९३ ॥

अभिवादनकार्यस्य क्रमस्तत्राशिषामपि ।

चचालाभूत्समाप्तश्च जयघोषपुरस्सरम् ॥ ९४ ॥

ज्ञानयज्ञः समेषां च विश्वमेतच्चराचरम् ।

परिवारगतं साक्षाद् बुद्ध्यावुद्बुद्धतां गतम् ॥ ९५ ॥

प्रस्थितानां गृहास्तेषां जाता वृक्षा क्षुपा अपि ।

पारिवारिकतां याता गोप्तारो जीवनस्य च ॥ ९६ ॥

टीका—भविष्य में ऐसा सत्र कब और कहाँ होगा ? यह प्रश्न पुलकित मन से विदा लेने वाले आदर सहित पुछने लगे। ऋषि ने कहा, आप लोग पर्व आयोजनों में सम्मिलित हुआ करें। वहाँ प्रायः ऐसे ही लोकशिक्षण की व्यवस्था रहती है। अतः सभी को वहाँ उत्तम लाभ प्राप्त करना चाहिए। सभी ने समापन समारोह में विशेष उत्साह दिखाया। ऋषि प्रयोजन के लिए अपने भाव भरे अनुदान भी विह्वल होकर प्रस्तुत किए। अभिवादन और आशीर्वाद का क्रम चला। जयघोष के साथ उस ज्ञानयज्ञ का समापन हो गया। सभी को समस्त चराचर विश्व अपनी बुद्धि में एक परिवार के रूप में उद्बुद्ध सा होने लगा। घर लौटते हुए सभी को पेड़-पौधे तक अपने जीवन रक्षक पारिवारिक सदस्यों के समान दृष्टिगोचर होने लगे ॥ ८९-९६ ॥

॥ इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदि ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः,

श्री धौम्य ऋषि प्रतिपादिते विश्वपरिवार, इति प्रकरणो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥